पश्चिमी धारणाओं के बंदीगृह से बाहर मीरां

मलय पानेरी

परख

माधव हाड़ा की सद्यः प्रकाशित 'वैदहि ओखद जाणै' मीरां और पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा को केंद्र में रखकर लिखी गई एक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय पुस्तक है. इसमें लेखक ने उन कारणों की पड़ताल की है जिससे पश्चिम में स्त्री-अस्मितायी चेतना के संदर्भ में मीरां एवं उसके काव्य के प्रति जिज्ञासा-भाव पहले की तुलना में अब बढ़ गया है. हालांकि यह स्पष्ट है कि उपनिवेशकाल से ही पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा में मीरां मौजूद रही हैं किंतु निरंतर बदलती वैश्विक परिस्थितियों के संदर्भ में यदि हम स्त्री-मनुष्य की दृष्टि से मीरां का आकलन करते हैं तो हमारे मूल्यांकन-मानक भी बदले हुए ही होंगे. देश, काल, परिस्थितियों आदि को हम यदि भारतीय संदर्भ में भी देखते हैं तो दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती भक्ति के स्वरूप में एक धीमा अंतर दिखाई देता है. पौर्वात्य और पाश्चात्य विचारकों में यदि इतिहास नायकों के संदर्भ में मतांतर हैं तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए. यह एक प्रक्रिया का हिस्सा है इसे समझने के लिए भक्ति-काव्य से संबद्ध जनचेतना के संबंध पर गौर करना आवश्यक है.

पश्चिमी ज्ञान- मीमांसा के आधार पर मीरां की रचनाओं का मूल्यांकन समझने से पहले यह जान लेना भी युक्तिसंगत होगा कि पश्चिमी दृष्टिकोण से एक विभाजन हमेशा मिलता रहा है–महान परंपरा और लघु परंपरा. यह विभाजन दोनों परंपराओं के नवोन्मेषों को ढकने के साथ-साथ सांस्कृतिक साझेदारी वाली परंपराओं को ध्वस्त करने के लिए है ताकि पाठक असल मूल से दूर रह जाए. यह भी हम अच्छी तरह से जानते हैं कि भारत की आदर्शवादी परंपराएं भी महान परंपरा-लघु परंपरा के विभाजन से विक्षत-आहत हुई हैं लेकिन प्रचलित अंतर्विरोधों के बावजूद भारत में हमेशा साझी संस्कृति-साझा जीवन की अवधारणा को ध्वस्त नहीं किया जा सका है. ऐसा इसलिए है कि हर समाज के सांस्कृतिक बोध में क्लासिकल परंपराओं, लोक परंपराओं और नवोन्मेषों का एक मिला-जुला रूप स्वीकृत रहा है. इन्हें किसी तरह अलग करना संभव नहीं है.

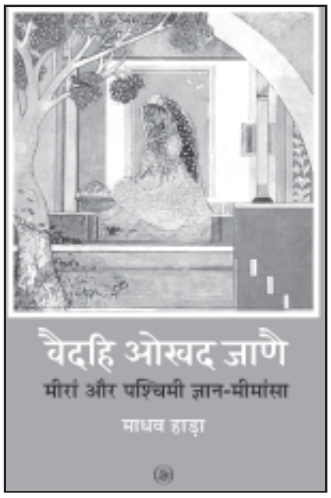

हम अपने परिवेश में किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन यहां की सामाजिक पारिस्थितिकी के अंतर्गत ही कर पाएंगे. पराधीनता से स्त्रियों की मुक्ति के संबंध में मीरां के जीवन और काव्य का विद्रोही स्वर इसीलिए यहां प्रेरक शक्ति के रूप में मौजूद रहा है क्योंकि आज भी भारतीय स्त्री को गुलाम बनाए रखने में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, रूढ़िवादिता की बड़ी भूमिका दिखाई देती है. आज भी यह माना जाता है कि हिंदी भाषी जनता ने अपने जीवन-संघर्ष और सामाजिक संघर्ष की प्रक्रिया में मीरां का महत्व पहचाना है. कभी-कभी विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियां और सामाजिक वास्तविकताओं का सामना करते हुए हम संस्कृति, परंपरा और साहित्य की पहचान का विवेक विकसित करते हैं. ठोस और सम्यक मूल्यांकन के लिए विवेक की भूमिका निर्विवाद है, लेकिन पूर्व और पश्चिम की ज्ञान-मीमांसा में आधारभूत अंतर है. भारतीय इतिहास प्रसंगों में वर्णित चरित्रों के बारे में पाश्चात्य और पौर्वात्य विचारकों के मतों में अंतर होना नई बात नहीं है. मीरां के संबंध में हुए अध्ययन से हम पश्चिमी विद्वता को भली-भांति जान पाते हैं.

मीरां के संघर्ष को जिस चेतना के साथ जोड़ा जाता रहा है वस्तुतः वह मीरां

व्यक्ति की सीमा से आगे नहीं जा पाती है. मार्क्स एंगेल्स इसे मिथ्या चेतना कहते हैं, ''सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति लोगों को अंधकार में रखकर, सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष पर पर्दा डालकर वास्तविक सामाजिक अंतर्विरोधों (अन्याय, असमानता आदि) के व्यावहारिक खात्मे की जगह उसके काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने वाली सामाजिक चेतना ही मिथ्या चेतना कहलाती है.'' मीरां को तत्कालीन एवं आज के संबंध में जिस चेतना के लिए आदर्श स्त्री बताया गया है उसकी सच्चाई भी ऐसी ही मानी जाएगी.

माधव हाड़ा की यह पुस्तक मूल रूप से छः अध्यायों में पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा के आधार पर मीरां के विशेष महत्व को रेखांकित करती है. पुस्तकारंभ में लेखक ने जो स्पष्ट किया है वही इस कृति का रचना अभीष्ट भी है. अध्याय औपनिवेशिक निर्मिति के अंतर्गत लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि कर्नल जेम्स टॉड की इतिहास-दृष्टि एकदम संतुलित और सही नहीं थी. यूरोपीय रोमेंटिसिज्म के संस्कार और राजपूतों को लेकर कुछ पूर्वाग्रहों के कारण वह कुछ ऐसी भूलें कर बैठे जो ऐतिहासिक घटनाओं से समानता नहीं रखती हैं. मीरां के संबंध में भी टॉड की कुछ जानकारियां भूलवश आधी-अधूरी थीं, फिर भी उससे मीरां की छवि का खास नुकसान तो नहीं हुआ, लेकिन कुछ ज्ञात-अज्ञात जानकारियों से उसने मीरां की जो छवि बनाई वह भारतीय जनमानस में स्वीकार्य हो गई. मीरां की रहस्यवादी कवयित्री स्त्री की छवि पूरी तरह से टॉड की ही देन है. मीरां को भक्त कवयित्री और मनुष्य दो अलग-अलग रूपों में देखा गया है इसीलिए यह बार-बार कहा जाता रहा है कि हिंदी आलोचना में मीरां के वास्तविक महत्व और पहचान की खोज अभी की जानी है. दरअसल सन् 1930 के दशक में भारत संबंधी पश्चिमी अध्ययन ने एक नव औपनिवेशिक मोड़ लिया था, जिसे हम पश्चिमी ज्ञान परंपरा के रूप में जानते हैं.

पश्चिमी ज्ञान-पद्धति में जितना महत्व प्रामाणिकता और उपलब्धता को दिया जाता है उतना हमारे यहां नहीं दिया जाता है इसी कारण श्रुत और स्मृत मीरां भी अस्तित्वशील हो जाती है. समय और व्यक्तियों के रिश्ते क्या हो सकते हैं यह हम मीरां की सामाजिक पारिस्थितिकी से जान पाते हैं. यहां माधव हाड़ा ने स्पष्ट किया है कि जेम्स टॉड ने मीरां के स्त्री-अस्तित्व के संघर्ष को इरादतन दूर करते हुए अपनी रुचि-अनुसार उनकी छवि का निर्माण किया. हम यह भी मान लें तो कोई बुराई नहीं है कि टॉड ने मीरां के महत्व को हर दृष्टि से कम किया है. जो छवि मीरां की टॉड ने सोच-समझकर बनाई वही भारतीय साहित्य में और जनमानस में प्रचलित हो गई. मीरां की यह औपनिवेशिक निर्मिति उसके मूल संघर्ष और अनुभव से बहुत दूर करने की दुरभिसंधि ही थी. इसी क्रम में मीरां का वास्तविक और सच्चा चरित्र सामने लाने के प्रयास भी हुए.

पुस्तक में लेखक ने विभाजित मस्तिष्क नामक अध्याय में जर्मन विद्वान हरमन गुस्ताव गोएत्ज की मीरां संबंधी खोज को रेखांकित करते हुए लिखा है कि, ''उन्होंने आग्रहपूर्वक मीरां से संबंधित सभी प्रकार के उपलब्ध स्रोतों का इस्तेमाल किया–वे इतिहास, जनश्रुतियों, पारिस्थितिकी साक्ष्यों में बहुत गहरे और दूर तक गए. मेवाड़, मारवाड़ और मेड़ता सहित मध्यकालीन इतिहास की उनकी जानकारियां और समझ कभी-कभी चमत्कृत करती हैं. पुनर्रचना के लिए उन्होंने उपलब्ध जनश्रुतियों को भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर सुसंगत रूप देने या उनके युक्तीकरण का प्रयास किया.'' एक ओर जनश्रुतियों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध स्रोतों के आधार पर परखना एवं दूसरी ओर उपलब्ध स्रोतों को नजरअंदाज कर कमजोर करने का अंतर वास्तव में 'विभाजित मस्तिष्क' का दृष्टांत है. जेम्स टॉड और गोएत्ज की यह मीरां संबंधी मानसिकता का भी अंतर है. टॉड द्वारा बनाई मीरां की छवि की मरम्मत गोएत्ज की खोज से होती है. इससे मीरां जिस नए रूप में हमारे सामने आती हैं वह संत कवयित्री की पारंपरिक छवि से भी बहुत अलग है. वह संत भी हैं, कवयित्री भी हैं, भक्त भी हैं और इन सबसे बढ़कर वह एक समग्र स्त्री-मनुष्य भी हैं. गोएत्ज ने यूरोपीय ज्ञान-मीमांसीय आग्रहों के चलते मीरां के ऐतिहासिक स्त्री-मनुष्य को संत और भक्त कवि रूप से कुछ अलग कर दिया.

गोएत्ज की मीरां-संबंधी इस धारणा से माधव हाड़ा असहमत न होते हुए भिन्न मत रखते हैं क्योंकि उनका मानना है कि भारतीय परंपरा में धर्म हमेशा से अविभाज्य रहा है अतः उनकी दृष्टि में भारतीय जीवन में पश्चिम से अलग धर्म की मौजूदगी रही है. लेखक ने यहां गोएत्ज के इस शोध को फिर भी अच्छा माना है क्योंकि उसने यूरोपीय संस्कारों के बावजूद मीरां की पुनर्रचना कर प्रचलित छवि में सुधार किया था. यह सही है कि यदि मीरां के महत्व की पहचान करनी हो तो स्त्री के बारे में सभी भक्त कवियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन अधिक उपयोगी होगा.

'हिस्ट्री की कसौटी' अध्याय के आरंभ में ही लेखक ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उन विचारों को स्पष्ट किया है जिसमें वे इतिहास की पश्चिमी अवधारणा को हमारी ऐतिहासिक धरोहर के मूल्यांकन के लिए अनुचित मानते हैं. भारतीय समाज, परंपरा, साहित्य और संस्कृति को परखने के लिए, समझने के लिए पश्चिमी विश्लेषण-पद्धति बहुत उपयोगी नहीं है इसलिए इसके सहारे प्राप्त परिणाम विश्वसनीय नहीं हो सकते हैं. यहां लेखक ने इतिहासकार फ्रांसिस टैफ्ट के मीरां संबंधी अध्ययन में उपयोग

हुए पश्चिमी मानकों के परिणामों का विश्लेषण किया है. फ्रांसिस टैफ्ट ने राजस्थान के आरंभिक आधुनिक इतिहासकारों की मीरां के जीवन और कविता संबंधी धारणाओं में उनके द्वारा उपयोग में ली गई सामग्री के आधार पर स्वयं के निष्कर्ष दे दिए. ये निष्कर्ष मीरां-जीवन एवं साहित्य के संबंध में तो ठीक-ठीक हैं किंतु मीरां की स्पष्ट निर्मिति में सहायक प्रतीत नहीं होते हैं. इस संदर्भ में माधव हाड़ा का मत उल्लेखनीय है- ''फ्रांसिस टैफ्ट ने मीरां की ऐतिहासिकता पर विचार एक यूरोपीयन इतिहासकार की तरह ही किया.'' अर्थात यूरोपीय इतिहास की तय की गई सीमाओं के परे जाकर वे मूल्यांकन करने का साहस नहीं दिखा पाईं. धारणाबद्ध सीमाओं के चलते खरे मूल्यांकन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है. इतिहास में व्यक्ति, समय और घटना के समन्वय का महत्व होता है. यदि इसमें किसी पूर्वाग्रह या प्रभाव को वरीयता देने की चेष्टा की जाती है तो उस ऐतिहासिक चरित्र का प्राथमिक रूप भी सही नहीं बन पाता है. यूरोपीय इतिहासकारों ने मीरां के मूल्यांकन के लिए अपने तयशुदा मानकों का ही उपयोग कर समस्या को और बढ़ा दिया. यद्यपि यह सही है कि मीरां विषयक प्रामाणिक उल्लेख पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं है, फिर भी उपलब्ध स्रोतों का सही उपयोग कर मीरां की एक स्वीकार्य छवि बनाना मुश्किल नहीं था. पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा की परिधीय बाध्यता के कारण यह संभव नहीं हो सका. लेखक ने इन सभी पहलुओं को सप्रमाण पाठकों के सम्मुख रखा है. इतिहास की कसौटी यही है कि समय और समाज के साथ जुड़े नायक-चरित्रों की परख परंपरा और प्रचलित संस्कृति के आलोक में ही करना युक्तिसंगत होता है.

भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष की विषमता को जिस तरह प्रचारित किया जाता रहा है उसी का परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी विद्वता ने इस पुरुष वर्चस्ववाद को दृढ़ता देने में अपनी रुचि दिखाई. यहां लेखक ने 'विरह का लैंगीकरण' अध्याय में इस पर ध्यान दिलाने की सफल चेष्टा की है कि भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष की विषमता की धारणा मूलतः नहीं है. प्रेम और विरह का अन्योन्याश्रित संबंध निश्चित रूप से कुछ भ्रांतियां पैदा करता रहा है लेकिन यह सच है कि इसे किसी प्रकार की बुराई के रूप में विस्तार नहीं मिला बल्कि मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति के तौर पर इसे समझा गया है. भारतीय परंपरा में प्रेम पर निर्भर भक्ति को हम कई रूपों में देखते हैं. वैसे भी प्रेम सीमित अर्थों में कभी नहीं रहा, वह व्यापक अर्थों में ही अस्तित्वशील रहा है. मीरां के संबंध में भी इसे ही सच माना गया है. मीरां को एक भक्त कवयित्री के रूप में मान्यता उस युग में मिली जब किसी स्त्री को भक्ति भी सहज सुलभ नहीं थी. मीरां का विरह एक आयामी नहीं था, बहुआयामी था. उसे सब तरफ से निराश होना पड़ा. इसी अध्याय में माधव हाड़ा ने भारतीय संत-भक्ति साहित्य के अमेरिकी विद्वान जोन स्ट्रैटन हॉले की 'थ्री भक्ति वॉयसेज' पुस्तक के बरअक्स विरह का लैंगिक विवेचन करते हुए बताया है कि भारतीय साहित्य में स्त्री के विरह के समानांतर ही पुरुष विरह भी महत्व-प्राप्त है. विरह या प्रेम विशेष लैंगिक वस्तु नहीं है बल्कि मनुष्य की सहज मानसिक स्थितियां हैं. इसका लैंगीकरण यों भी उचित नहीं है और भक्ति के संदर्भ में तो कतई युक्तिसंगत नहीं है. दरअसल पश्चिम की भौतिकवादी ज्ञान-मीमांसा और भारतीय तत्व मीमांसा में पर्याप्त अंतर है. दर्शनशास्त्र की इस शाखा में वास्तविकता के सिद्धांत और यथार्थ की संभावना के पहले सिद्धांतों के अध्ययन पर बल दिया जाता है.

मीरां की रचनाओं की प्रामाणिकता को लेकर हमेशा विवाद रहा है. परंतु भक्तिकाल में यह सिर्फ मीरां के साथ ही नहीं था बल्कि अन्य संत भक्त कवियों की रचनाओं के संदर्भ में भी संदेह कभी कम नहीं रहा. इस प्रसंग में माधव हाड़ा ने 'मौखिक बनाम पांडुलिपि' अध्याय मे मीरां की रचनाओं की प्रामाणिकता के संदर्भ में पश्चिमी और उनके समवर्ती/अनुवर्ती भारतीय इतिहासकारों के मतांतरों का विश्लेषण कर इस दुरभिसंधि की ओर संकेत किया कि शायद मौलिक परंपरा में जीवित मीरां की ख्याति को कम करने के लिए या उस समय की गायन-परंपरा से मीरां के भजनों-पदों को बाहर करने के लिए लिपिबद्ध ही नहीं किया गया. पश्चिमी इतिहासकार विनांद कैलवर्त्त के अध्ययन से भी इस जानकारी की आंशिक पुष्टि होती है. इतिहासकारों की सख्त और साहित्यालोचकों के उदार मतों को एक साथ रखकर भी यदि परख की जाए तो यही स्पष्ट होता है कि मीरां की रचनाओं की प्रामाणिकता पर संदेह दोनों ही वर्गों में मौजूद है. राजस्थान के इतिहासकारों और साहित्यकारों ने भी मीरां की रचनाओं के संबंध में प्रक्षिप्ति पर ही बल दिया है. मौखिक परंपरा में प्रक्षिप्ति से इनकार करना भी उचित नहीं है. 'मौखिक बनाम पांडुलिपि' भी एक ऐसा द्वंद्व विचार प्रस्तुत करता है जो मीरां के संबंध में मौजूद समस्याओं के निवारण में सहायक सिद्ध नहीं होता है. श्रुत और स्मृत की मौखिक भारतीय परंपरा का महत्व हम जानते हैं, अधिकांश भारतीय साहित्य इसी परंपरा में सुरक्षित भी रहा है. यहां हम लेखक के इस मत से सहमत है कि भाव-विस्तार, भाषा और संगीत की अपनी जरूरतों के अनुसार मीरां की रचनाओं में कुछ परिवर्तन किया गया होगा लेकिन यह उल्लेख्य नहीं रहा. परंतु धीरे-धीरे इन्हें नोटिस किया जाने लगा और मीरां की रचनाओं को ओथेंटिसिटी के भ्रम में उलझाया जाने लगा. लेखक का यह मत

सुचिंतित है कि यूरोपीय परंपरा और वहां की सांस्कृति की कसौटी पर मीरां की रचनाओं की मीमांसा युक्ति-संगत नहीं है. 'संगतता का आग्रह' के बरअक्स लेखक ने पश्चिमी विद्वता की इस धारणा का खंडन किया है कि लोक में प्रचलित मीरां की एकाधिक छवियों के बावजूद वास्तविक मीरां इससे अलग हैं. मीरां की प्रचलित छवियों और स्थापित कवयित्री मीरां को लेखक ने अलग न करते हुए यूरोपीय विद्वानों की परिपाटीबद्ध मूल्यांकन-प्रवृत्ति को श्रुत और स्मृत की भारतीय परंपरा से तुलनात्मक रूप से कमजोर माना है.

हमारे यहां की साहित्यिक परंपराओं की निर्मिति में भिन्न-भिन्न प्रेरणाएं और प्रभाव सक्रिय रहे हैं, इसका आशय रचनाओं की विविधता के संदर्भ में है : इसे किसी भी तरह संशय के विस्तार के अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए. मीरां के संदर्भ में पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा में यही हुआ है. हमारे यहां भक्ति-काल को स्वर्ण- युग कहे जाने का मूल कारण उसका क्षेत्रीय वैशिष्ट्य भी है. इसे हम क्षेत्रीय भाषाओं के संक्रमण के रूप में कभी नहीं देखते हैं, बल्कि बोली-बानी के आत्मसातीकरण को भाषा की ग्राह्य विशेषता के तौर पर पहचानते हैं. यहां लेखक ने स्पष्ट किया है कि मीरां की रचनाओं के मूल पाठ के निर्धारण को उसकी मूल भाषा या क्षेत्रीय भाषा से जोड़कर देखना भी न्याय संगत नहीं है. इसकी भी वजह यह है कि मीरां की रचनाओं में दिखने वाला वैविध्य उस समय की भाषा के वर्गीकरण एवं विभाजन की औपनिवेशिक समझ के कारण दिखता है.

'मीरां' और पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा से यह सिद्ध होता है कि सीमित दृष्टि या तयशुदा मानकों के आधार पर किया गया मूल्यांकन स्वीकार्य स्थापनाएं नहीं दे सकता है. मीरां के संबंध में पश्चिमी विद्वानों ने जो खोज-परख की है उसमें केवल औपनिवेशिक मानसिकता ही दिखाई दी है. मीरां का साहित्य इस सीमा में नहीं आ सकता है.

मीरां की कविताओं में ऐसे बिंब लगातार आते हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि वह किसी बंदीगृह या घेरे को तोड़कर बाहर आना चाहती हैं– *''गली तो चारों बंद हुई हैं/ मैं हरि से मिलूं कैसे धाय.''* जब रचनाकार अपने मूल स्वभाव में घेरे से स्वतंत्र होना चाहती है तो इसके मूल्यांकन के लिए (पश्चिमी/भारतीय) घेरे क्यों नहीं टूटने चाहिए!

❐

पुस्तक : वैदहि ओखद जाणै
(मीरां और पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा)
लेखक : माधव हाड़ा
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य : 250 रुपए

संपर्क : अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001 (राज.)
मो. 9413263428
ईमेल : malaymadrise@gmail.com

लघुकथा

तैयारी

प्रहलाद श्रीमाली

इलाके के छुटभैये नेता ने एक कार्यक्रम में नगर के चर्चित गुंडे को आमंत्रित किया. राजनीति में अपना कद बढ़ाने के लिए उसके इस्तेमाल की यह चालू तिकड़मी चालाकी गुंडा भांप गया.

गुंडे ने उसे बंदर और मगरमच्छ की मीठे कलेजे वाली कहानी सुनाई. फिर दो टूक कहा, 'मुझे बुलाने का अपना स्वार्थ स्पष्ट बताओ ताकि मैं यथोचित तैयारी के साथ आऊं और हमारी दोस्ती न टूटे जैसे बंदर-मगरमच्छ की टूट गई थी और वे दोनों नुकसान में रहे. यदि मगरमच्छ ईमानदारी से बंदर को वास्तविकता से अवगत कराता तो उनकी दोस्ती नहीं टूटती बल्कि और मजबूत हो जाती.'

'यह कैसे हो पाता?', छुटभैये नेता ने भौचक्काते हुए पूछा.

'काश, मगरमच्छ दोस्ती निभाते हुए बता देता कि उसकी पत्नी बंदर के दिए मीठे अमरूद खाते-खाते अब रोज अमरूद खाने वाले बंदर का और अधिक मीठा कलेजा खाने को आतुर है! तो बंदर अमरूद से भी अधिक मीठे फलों का मलीदा ले आता. इससे काम बिगड़ता नहीं, बन जाता. अब तो समझे!', गुंडे ने हुमकते हुए कहा तो छुटभैये नेता के ज्ञानचक्षु खुल गए.

वह पुलकते हुए बोला, 'आप तो वाकई उस्ताद हैं जी! बस इतनी कृपा करें कि अपने गैंग के साथ सफेदपोश रूप में पधारें!'

संपर्क : 1, वडामलाई फर्स्ट लेन, सोवारपेट, चेन्नई, तमिलनाडु-600001 ईमेल : prahaladshrimali@yahoo.co.in